भारतीय परम्परा में कन्यादान का वास्तविक स्वरुप

एक महिला आईएएस अधिकारी द्वारा कन्यादान शब्द का विरोध करने पर दान शब्द को अंग्रेजी के डोनेशन शब्द का हिंदी अर्थ समझकर मीडिया के मूर्ख इसे ऐतिहासिक व साहसिक कदम बता रहे हैं, जबकि हमारी भारतीय सनातन संस्कृति में कन्या दान की भावना, परंपरा और इससे जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों में गहन अर्थ छुपे हुए हैं। कन्या दान का मजाक उड़ाने वाली आईएएस अधिकारी तपस्या, उनके परिवार वाले और उनके पति महोदय अगर इसके महत्व को समझ लेंगे तो वे खुद ही अपने इस 'ऐतिहासिक' कदम पर शर्मिंदा होंगे।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने अपनी कृति "संस्कार भास्कर" में कन्या दान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-

कन्यादान का स्वरुप — दान का अर्थ है – ' स्वस्वत्व-निवृत्तिपूर्वक परस्वत्वापदनं दानम् ' अर्थात् देय वस्तु पर अपना अधिकार त्याग कर उसे दूसरे के अधिकार में देना । क्या कन्या भी इसी प्रकार से दे दी जाती है ? निश्चय ही अन्य पदार्थों की भाँति कन्यादान का स्वरूप स्वस्वत्व-निवृत्तिपूर्वक परस्वत्वापादन नहीं है , क्योंकि कन्यादान के पश्चात् भी न तो स्वत्व-निवृत्ति ही होती है और न ही कन्या गाय-बैल की तरह ऐसी सम्पत्ति है जिसका इस प्रकार दान दिया जा सके । यदि कन्यादान के पश्चात् स्वत्व-निवृत्ति हो जाती तो फिर लोक में मेरी पुत्री , मेरी बहिन , मेरी धेवती , मेरी भानजी , मेरी भतीजी आदि व्यवहार कन्या के विषय में नहीं होने चाहिए थे , क्योंकि जब कन्या अपनी नहीं रही तो उसकी सन्तान के साथ अपनापन कैसे रह सकता है ? परन्तु कन्या के विषय में इस प्रकार के प्रयोग देर तक और दूर तक (मेरा परधेवता) चलते रहते हैं ।

ये भी पढ़िये : हमारी दूषित शिक्षा व्यवस्था का परिणाम है तपस्या परिहार की सोच

पारस्करगृह्य सूत्र के १-४-१६ पर भाष्य करते प्रसिद्ध पण्डित गदाधर लिखते हैं-

(हिन्दी अर्थ) – स्वत्व त्यागपूर्वक परस्वत्वापादन दान है , परन्तु स्वकन्या किसी प्रकार से स्वकन्या न रहे , ऐसा नहीं किया जा सकता और न ही कन्या किसी और की हो जाती है , यत: विवाहोपरान्त भी " यह मेरी कन्या है " इस कथन से । इसलिए विवाह-संस्कार में कन्या के लिये दान शब्द का गौण प्रयोग जानना चाहिए ।

आपस्तम्बसूत्र (६-१३-१०) में लिखा है – " यथादानं क्रयविक्रयधर्माश्चापत्यस्य न विद्यते " – अन्य वस्तुओं की भाँति कन्या का दान नहीं होता , क्योंकि शास्त्र सन्तान के क्रय विक्रय का निषेध करता है ।

कन्या के साथ दान शब्द मुख्यार्थ में कहीं भी प्रयुक्त नहीं होता । मनुस्मृति में दान शब्द ब्राह्म , दैव , आर्ष तथा प्राजापत्य विवाह में उसके भरण-पोषण तथा उसकी मान-मर्यादा की रक्षार्थ दायित्व सौंपने एवं सख्यभाव से परस्पर मिलकर गृहस्थाश्रम में रहते धर्माचरणपूर्वक धनोपार्जन कर उसका उपभोग करने तथा प्रजोत्पादन करने की अनुमति देने के अर्थ में ही आया है , वैखानसगृह्यसूत्र में पढ़े गये ब्राह्मादि विवाहों के संकल्प से स्पष्ट होता है – (अन्वयार्थ) – ब्राह्मविवाह में यज्ञानुष्ठानादि , धर्माचरण , प्रजोत्पादन तथा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये , दैव में धर्माचरण , प्रजोत्पादन एवं धनोपार्जनादि गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों के सहयोग के लिये , आर्ष में यज्ञानुष्ठानादि पुण्यकर्मो , सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों के सहयोग के लिये , प्राजापत्य में ब्रह्मयज्ञादि के अनुष्ठान , देव , ऋषि और पितरजनों की सेवा-सुश्रूषा , सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये धर्मपत्नी के रुप में अपनी कन्या को सौंपता हूँ – ऐसा कहकर उदक प्रदानपूर्वक कन्या वर को सौंपे ।

कन्यादान का अभिप्राय व्यक्त करते हुए आचार्य शौनक कहते हैं – ' कन्यां सगर्व कर्मभ्य: करोति प्रतिपा्नम् ' अर्थात् परस्पर मिलकर प्रजोत्पादन तथा श्रौत-स्मार्त्त कर्मों का अनुष्ठान करने के लिए पिता अपनी पुत्री वर को सौंपता है ।

उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट हो जाता है कि कन्या स्वत्वनिवृत्तिपूर्वक गोवृषादिवत् या दास-दासीवत् वर को नहीं दी जाती , वरन् गृहस्थाश्रम के दायित्वों को निभाने के लिये एक सहयोगी के रुप में दी जाती है ।

" कन्यादान का वर्त्तमान दूषित भावना मध्यकाल की देन है । "

कन्यादान का परिभाषित अर्थ — कन्या पिता के घर में प्राय: न्यूनतम 18 से 25 वर्ष तक रही । इस बीच वह माता-पिता , भाई-बहिन , सखी-सहेलियों का भरपूर प्यार पाती रही । विवाह-संस्कार के पश्चात् वह उन सबसे दूर पति के घर चली जाएगी । उस दु:खद चिरकालीन विदाई के समय परिवार के सभी सदस्य , सखी-सहेली आदि अपनी प्रेमवती भेंट उसे भेंट करते हैं । वास्तव में इसे " कन्यादान " कहा जा सकता है – ' कन्यायै दानमिति कन्यादानम् ' । विवाह के अवसर पर कन्या को मिलनेवाली यह सम्पूर्ण राशि कन्या-धन होता है । पुरोहित लोग कन्यादान के नाम से ही यह धन कन्या को दिलवाते हैं अत: कन्या के लिये दिये भेंटस्वरुप धन का ही मुख्य अथवा परिभाषित नाम कन्यादान है ॥

विवाह शब्द का अर्थ भी 'विधिपूर्वक एक दूसरे को प्राप्त करके परस्पर दायित्व को वहन करना-निभाना हैं। '

इस सन्दर्भ में वेद भी उचित निर्देशन देते हैं-

अथर्ववेद 1/14 प्रथम कांड के सूक्त में 4 मंत्र विवाह व्यवस्था से सम्बंधित हैं।

पहले मंत्र में वधु के गुणों का वर्णन है। वधु कुलवधू भगं अर्थात आतंरिक एवं वाह्य सौंदर्य से परिपूर्ण एवं वर्च: अर्थात तेजस्विता से युक्त हो।

दूसरे मंत्र में वर के गुणों का वर्णन है। वर नियमितता अर्थात नियमित जीवन वाला और संयमित अर्थात संयम रखने वाला हो।

तीसरे मंत्र में श्वसुर दामाद से कहता है।हे राजन (दामाद के लिए सम्मान व श्रेष्ठतासूचक शब्द) एषा (यह कन्या) ते (तेरे) कुलपा (कुल को पालन करने वाली/ पवित्र करने वाली) है। इसे मैं तुम्हें दे रहा हूं।

चौथे मन्त्र में वर को असित अर्थात विषयों से अबद्ध, कश्यप अर्थात वस्तुओं को ठीक रूप में देखनेवाला एवं गय अर्थात प्राणशक्ति से संपन्न कहा गया हैं। वधु को अन्तकोष : अर्थात आध्यात्मिक संपत्ति के समान बताया गया है।

इन मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि विवाह व्यवस्था गुणवान वर और गुणवती पत्नी का मेल करने की वयवस्था का नाम हैं। ताकि उत्तम संतति से समाज सुशोभित हो।

(लेखक देश के जाने माने बाल चिकित्सक हैं व वैदिक, धार्मिक, राष्ट्रीय व ऐतिहासिक विषयों पर अपने ब्लॉग http://vedictruth.blogspot.com/ पर शोधपूर्ण लेख लिखते हैं)